अँधेरी कविताएँ

भवानीप्रसाद मिश्र

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

अँधेरी कविताएँ

●

अँ । धे । री । क । वि । ता । एँ

बड़े भैया को

अपरिहार्य

ख़याल जो अभी
बना नहीं है
मन जो अभी

मना नहीं है
दुख जो अभी
घना नहीं है

शब्दों में कहना है
और कहना है अभी
शुरू किये देता हूँ

तमाम जोखिमें ली हैं
एक और
जोखिम लेता हूँ

शरीर और फ़सलें, कविता और फूल

कमर जैसे कलाई टूट जाये
हिम्मत जैसे घड़ी फूट जाये
तबीयत

कुछ नये ढंग से ख़राब हुई है
सोचने की इच्छा लगभग शराब हुई है

ज़रा अकेलापन
कि ख़याल में ग़र्क़
उम्र के वर्क़

उसी में धुंधले हैं
उजले हैं उसी में
सामने आते हुए दो हाथ

साथ-साथ सूखते दिख रहे हैं
एक वृक्ष एक नदी
नाव पर

लदी हुई बारात को
गीत नहीं सूझ रहा है
शाम का सारा समाँ

मल्लाह से जूझ रहा है
असभ्य सन्देहों को सहलाऊँ
धुंधले-धुंधले दिनों को

धूप में घसीटूँ नहलाऊँ
बहलाऊँ
बरसों का उदास मन

रास्ते के हिसाब से
क़दम धरूँ
शरीर और फ़सलें

कविता और फूल
सब एक हैं
सब को बोना बखरना गोड़ना

पड़ता है
सत्य हो शिव हो सुन्दर हो
आखिरकार इन सब को

किसी न किसी पल
तोड़ना पड़ता है
जैसे काँटा

अचानक पाँव में गड़ता है
ऐसे हर कारण
समय में जा कर पड़ता है

किस क्षण
कौन-सा कारण
उच्चाटन

वशीकरण मारण
या मरण का पनपा
सो मैं नहीं जानता

मगर कारणहीन
नहीं मानता मैं
किसी पल के पाँव को

वह लँगड़ा के चले
चाहे हिम्मत से जमा कर एड़ी
जिन्दाबाद कारण के काँटे

संयोग की बेड़ी
ऊँचे से गिरती है जब धारा
तो धुँआ हो जाता है उस का पानी

बानों को तुम ने
पत्थर पर कसा
तो धुँआ भी समझते उस का

असम्भव को तश्तरी में पेश
तुम करो
सम्भव से ज्यादा को

कलरव नहीं कहते
उस का अलग नाम है
शब्द अपनी गवाही देंगे

मगर उस के आगे
जो उन के पीछे तक देखता है
एक मौसम आ रहा है

दूसरा जा रहा है
मेरे मन में इन दिनों
कोई नहीं गा रहा है

क्योंकि मन
एक मैली कमीज़ है इन दिनों
सोच रहा हूँ

धुलने दे दूँ कहीं
या खुद धो डालूँ
मगर कमीज़ एक ही है

और मौसम
खुले वदन दस मिनिट भी
वैठने का

नहीं है
याने यह मौसम
मेरी क़लम से

एक भी गीत ऐंठने का नहीं है
जो दृश्य
सारे दृश्यों में अच्छा है

इन दिनों उस की तरफ़
मेरी पीठ है

याने अदीठ एक घाव है
अच्छे से अच्छा दृश्य
मेरे लिए फ़िलहाल

सवाल नहीं उठता
उसे मेरे देख सकने का
वर्णन उस का

पर्यायवाची हो सकता है
कोरे वकने का
इस लिए

जो कह सकता हूँ इन दिनों
उस में न गाने का कुछ है
न मुसकाने का

ख़ाली शामों में
उसे पढ़ा-भर जा सकता है
उलझन-भरी दृष्टि

उस के बाद गढ़ायी जा सकती है
अँधेरापन समेटते हुए
आसमान पर

क्यों कि
विस्मृति की इच्छा-भर
बहती है

इन कविताओं के तल में
रोज़मर्रा का दुखी चेहरा
प्रतिबिम्बित है इस जल में

ग़ोताजन हैं इस में छोटे सुख
दीर्घ दुख
चित लेटे हैं इस की लहरों पर

पहरों बिना थके
पड़े रह सकते हैं
आप चाहें तो कह सकते हैं इसे

उन की ज़्यादती
पानी के साथ
या कह सकते हैं

मेरी अनौपचारिकता
बानी के साथ
फूल को

बिखरा देने वाली हवा भी
कौन कहता है
कि चलनी नहीं चाहिए

समूचा जंगल
जला देने वाली आग भी
कौन कहता है

कि जलनी नहीं चाहिए
अरसे ने
ऐसी एक हवा

मुझ पर चल रही है
जल रही है मुझ में
अरसे से एक ऐसी आग
और मैं उस की सुन्दरता को
समझने की कोशिश कर रहा हूँ
कभी अलकें दिखती हैं

इस सुन्दरता की मुझे
तो कभी पलकें
शाढिम और लचीली

बँधती नहीं हैं वह
मेरी बाँहों में
मगर झलकें ज्यादा-ज्यादा

मिलती हैं इस की अब
पहले से
मैं खुला बैठा हूँ

हवा में और आग में
सपना नहीं था
कि ऐसी ज़बर्दस्त निष्क्रियता भी

लिखी है भाग में
किस का खयाल करूँ
सौभाग्य के इस पल में

बह रही है
विस्मृति की इच्छा-भर
भीतर जब
मन के तल में

■

हदों के बाद भी

अनुभव के ये क्षेत्र
जहाँ अपनी सत्ता को
हमें हदें दिख-दिख जाती हैं

जहाँ साफ़ हो जाती है यह बात
कि सारे
कवच हमारे

आखिरकार अभेद्य नहीं हैं
वैसे
जैसे हम समझे थे

परम दीन की तरह जहाँ हम दीन
क्षीण हम जहाँ क्षीणतम किसी शक्ति से
अपनी ही आँखों के आगे

जहाँ निपट दयनीय
किन्तु अपनी ज़िद में हम
अनुभव के ये क्षेत्र

पार करने की धुन में
मानचित्र उन के भी मन में
खींचा करते

उस नक़्शे को
आर-पार लाँघने की हमारी यह इच्छा
क़दम-क़दम पर झूठी पड़ती

किन्तु मानते रहते हैं हम
बात जूझने से बनती है
हम जूझेंगे

मेरा भी इन दिनों
यही है हाल
एक नक़्शा अनुभव का

खिंचा कहो
या खींचा मैं ने
उसे पार करने की

धुन में
मरा-मरा मैं
लगा हुआ हूँ

■

मनोरथ

जब अँधेरा घिरता है
मेरा मन डाल के टूटे पत्ते-सा
नीचे गिरता है

और आवाज़ सुनता हूँ मैं
डाल से अपने मन के टूटने की
जमीन पर आ रुकने तक

हवा का बदला हुआ
स्पर्श भी अनुभव करता हूँ
जब दूसरे टूटे पत्तों के साथ

जा कर पड़ जाता है मेरा मन
तब सघन अँधेरा
बुद्धि को छूता है

और बुद्धि सोचने के बजाय
तथ्यों को
उकसाती है कल्पना को

और कल्पना
अजीब-अजीब सम्भावनाएँ
सोचती है

एकाध बार लगता है
जब मन नहीं रहा शरीर में
तो बिना मन के इस शरीर को

कौन चीज़ कहाँ तक चलायेगी
मन के बल पर
ले जाता था मैं

इसे चाहे जहाँ
दिन को पहाड़ों की चोटियों पर
चढ़ा देता था

रात में
दिन-भर की स्मृतियों से
धो देता था इस की थकान

और अब सिर्फ़
तय किया जा सकता है
दिन निकलने पर

बुद्धि के बल पर
रास्ता
मगर दौड़ाया तो

नहीं जा सकता पाँवों को
दौड़ने की इच्छा के बिना
किसी छोटे-बड़े पथ पर

रथ था
मेरा मन
शरीर के लिए।

टूट चुका है
अब वह मनोरथ
किसी डाल के पत्ते-सा

■

बेचारी चेतना

यह जो लड़की की आंख में है
और लड़के की जुबान पर
क्या चीज़ है यह

यह जो धरती पर सब जगह है
और सब जगह है जो
आसमान पर

क्या चीज़ है यह
जिस ने मुझे शब्द दिये हैं
और समुन्दर जिस से

लहर लेता है
क्या चीज़ है यह
जिसे छू कर हवा इठलाती है

और पौधा जिसे पा कर फूल देता है
क्या चीज़ है यह
अदम्य और कोमल और कठोर

जो अभी मन बहलाती है
अभी समूची जाति को
खून में नहलाती है

क्या चीज़ है यह
जिसे हम प्यार कहते हैं
जिस में पैदा होते हैं हम

और जिस में रहते भी हैं
जिस के मूल में द्वन्द है
स्वभाव में आदर्श

बाँटने निकलता है जो
सुख और हर्ष
और यहाँ तक कि आनन्द

मगर रह जाता है जो
दयनीय और हास्यास्पद हो कर
वह जाता है

दुनिया-भर को
बदलने का जिस का सपना
आँसू बन कर

होने को जिस के भाग्य के अक्षर
काले हैं
मगर जिस के बिना

कुछ नहीं है लड़की की आँख
लड़के की जुबान
सारी धरती सारा आसमान

समुन्दर
और हवा
और फूल

यही है इस की परम शक्ति
कि कुछ नहीं रहता
अनुकूल

इस के अपने परम रूप में आ जाने पर
तब सब इस का
विरोध करते हैं

बेचारी चेतना

अंश को मगर ज़रा के सहेजते हैं
ग़नीमत मान कर
गले से लगाते हैं

और अगर कोई कहे
कि तुम में
चेतना का अंश नहीं है

तो अपने समूचे
प्राण-मन से
लजाते हैं।

■

एकाध बार

सवेरे-सवेरे
उजाले के घेरे से
बाहर हो जाता हूँ एकाध बार

दोपहर तक द्वार बन्द कर के
कमरे के
अँधेरे के छन्द पहनता हूँ

हलके-भारी
बारी-बारी
शाम को खोल कर द्वारे

अँधेरे कमरे के
बाहर निकलता हूँ
डूब जाने के खयाल से

और भी ज्यादा फैले घने
अमावस के अपने हाथों बने
जीवित अँधेरे में

ताक़त है उजाले में
खींच लेने की
अपने भीतर

देखी अनुभवी है मैं ने
उस की यह ताक़त
पतंगे के साथ-साथ

डुबाने की मगर
कर लेने की अपने में लीन
ताक़त नहीं है उस में

इसी लिए उजाले के घेरे से
बाहर हो जाता हूँ जब एकाध बार
अँधेरा पार कर जाने का

तब जी नहीं होता
हलके अँधेरे से भारी में
भारी से और भारी में

डूबते रहने का जी होता है
इतना तो मानेंगे आप भी
कि हाँ, ऐसा भी होता है

मरी बिल्ली की कहानी

यहाँ रास्ता ख़त्म है
और रास्ता जहाँ ख़त्म है वहाँ
एक काली बिल्ली मरी पड़ी है

जाने उस का गोश्त क्या हो गया
सिर्फ़ खाल पड़ी है उस की
समूची और चमकदार

और बास नहीं है
आसपास
याने इस बन्द रास्ते पर

आज ही डाल गया है कोई
एक काली बिल्ली मार कर
और गोश्त उस का

उस ने
जाने क्या
कर दिया है

मैं क्यों आ गया था इस बन्द रास्ते पर
शायद
छोटे रास्ते की फ़िक्र में

और अब लौट रहा हूँ
उलटे पाँवों
रास्ता बन्द देख कर

और जहाँ रास्ता बन्द है
वहीं एक काली
मरी बिल्ली देख कर

लो आज फिर आ गया मैं
उसी बन्द रास्ते के सिरे पर
मुझे मालूम था

कि मैं कल के रास्ते पर
जा रहा हूँ मगर जैसे
बहुत साफ़ नहीं मालूम था यह

कहीं भीतर
एक आभास-भर था
एकाएक मगर

जब बन्द हो गया रास्ता
और सामने वही
कल की मरी बिल्ली की खाल दिखी

तो मन वितृष्णा से भर गया
और लौटा उलटे पाँवों
मगर उतने उलटे पाँवों नहीं

जितना कल लौटा था
आज कल से एक क्षण ज़्यादा देखा
उस मरी बिल्ली की तरफ़

आज उस के रंग की चमक
कुछ
कम-सी लगी

शायद अँधेरे में
कोई जूता पहने उसे रौंद गया है
धूल पड़ गयी है उस की चमक पर

थोड़ी देर के लिए
उस की चमकदार आँखें भी मन में आयीं
मगर आँखें यहाँ तो नहीं थीं

कान थे
मूँछ थी
दाँत भी नहीं दिखे

क्यों आ गया मैं
आज भी
इस वन्द रास्ते पर

और फिर आज भी आ गया
वल्कि अन्त तक आने नहीं पाया
अन्त के ज़रा पहले

एकाएक दिखी वह खाल
किसी ने वहाँ से उठा कर उसे
आज यहाँ डाल दिया था

और आज आसपास
एक वास भी थी
नाक वन्द करके

आगे वढ़ जाना चाहा
मगर आगे तो रास्ता वन्द था
और पीछे विल्ली पड़ी थी

और अव रोज़-रोज़
सोच रहा हूँ मैं उसी विल्ली की वात
कभी दिन कभी रात।

■

मौत की आँखें

दम कहीं नहीं हैं
कह कर
उस ने मेरी तरफ़ देखा

दम उस की आँखों में भी
नहीं था
मैं चुपचाप

उस की आँखों को देखता रहा
उस ने कहा
दम कहीं नहीं है

मैं दम को
साहस को हिम्मत को
खोज में घूमी हूँ

जहाँ-जहाँ शक हुआ
कि दम है
रुकी हूँ वहाँ-वहाँ

अपने को इस सन्देह पर
लुटाया है
कहाँ-कहाँ

मगर दम कहीं नहीं है
सब दम का नाटक
करते हैं

क्योंकि नाटक इस का
उपयोगी है
वह खुद नहीं

और फिर वह हलके-से हँसी
बेदम उस की आँखों में
एक चमक आयी

और मैं सोचने लगा
इस ने
मुझे भी थाह लिया है !

■

मौत के नाख़ून

मैल से भरे हुए
काले नाख़ून चुभो दिये हैं
तुम ने मेरे गले में

और मैं
उस चुभन का दर्द
उतना महसूस नहीं करता

जितना
सोचता हूँ
नाखूनों के कालेपन को

बचपन से है मुझे
नखों को काट कर
साफ़ रखने का खब्त

इसी लिए ज़ब्त नहीं होता
कालापन
तुम्हारे नाखूनों का

होने को इस समय
हैं वे तुम्हारी
अँगुलियों के सिरे पर

मगर थे
थोड़ी देर पहले
मेरे गले के भीतर

धँसते हुए तुम्हारे
काले नाख़ूनों को
मैंने चाहा था

लाल सूर्ख़
कर दे
मेरा ख़ून ही

मगर लाल नहीं हुए
तुम्हारे नाख़ून
ख़ूनाख़न करके भी

मेरा गला
और मैं चुभन के दर्द को
उतना महसूस

नहीं कर रहा हूँ
जितना सोच रहा हूँ
तुम्हारे नाख़ूनों को

उन के कालेपन को
मौत साफ़-सुथरी चाहिए
वैसी नहीं

जैसी आती दिखती है

■

रक्त कमल

सुनती हो
मेरी वहन आत्मा
किसी नदी के हरहराने-जैसी

यह आवाज़
यह रगों में दौड़ता हुआ
मेरा ख़ून है

या
सुदूर
अथवा
पास के

किस ओर है
छोर
इस शोर का

समझ में नहीं आता
कभी भीतर उठता है
कभी उठने लगता है

पाँवों के पास
कभी सिरे पर दुनिया के
कभी ओत-प्रोत

करते हुए दुनिया-भर को
और फिर भी बार-बार
लगता है

कि हो न हो
यह मेरी रगों में दौड़ता हुआ
मेरा खून ही है

खून मेरा
जिस में मेरी खुशी
डूब गयी है

और मन का
रक्तकमल जिस में
दिन भर भी

खिला नहीं रह सका है
शायद मेरी रगों में
यह खून

इसी शर्त पर
वह सका है
कि खुशियाँ डुबायी जायेंगी

बिखराये जायेंगे दल
रक्तकमल के
शाम आने के भी पहले

बता सकती हो तुम
मेरी बहन आत्मा
कि कहीं

तर भी है इस नदी के
या नहीं
तर जहाँ से बिना तेरे

पार जा सके मेरी खुशी
पाँव-पाँव जा सके
जहाँ से मेरा रक्तकमल

किनारे के उस पार
[illegible] [illegible] के घने
सरोवर में

खुशी को
सख्त मना किया था
मैं ने

कि न आये वह
मेरे खून की धारा में
कहने अपना दुःख

मगर वह गयी
और अब गा रही है वहाँ
डुबकियाँ

बता सकती हो तुम
मेरी बहन आत्मा
खुशी का खून से

क्या सम्बन्ध है
क्यों मना करने पर भी
जाती है वह

उसे बताने
अपना दुःख
जब कि यों

वे अलग-अलग रहते हैं
क्यों है मगर उन्हें मिल कर
रोना

खून और खुशी
दुःख में सगे हैं
मगर खुशी को

तैरना
नहीं आता
और दुःख को थमना

बहन आत्मा
वह जगह बताओ
कम हो जहाँ खून गहराई में

और पार कर सके
जहाँ से उसे ख़ुशी
बिना तैरे पाँव-पाँव

और बिखर न जाये
जहाँ तूफ़ानी लहरों में
रक्तकमल

■

तुम से

मैं तुम से कह रहा हूँ
और कहना
कविता में चल रहा है

कहना शुरू कर दिया है
तौला नहीं है इस का छन्द
सिर्फ़ खोल कर हवा में

प्राण भर दिया है
मैं कह रहा हूँ
तुम्हें सुनना चाहिए

फूल जो तुम्हारे लिए
खिलाये जा रहे हैं उन में से तुम्हें
कुछ न कुछ चुनना चाहिए

पाने की घड़ी में
खोने की इच्छा मत जगाओ
आओ सुनो

और चुनो
मैं तुम से
कह रहा हूँ

■

पूर्णमिदम्

समय ख़ुद तुम हो

जितनी देर तुम हो
उतनी देर
समय है

तुम्हारे घर से
आकाश के बाहर तक
एक ख़ाकी

उथल-पुथल फैली है
बाक़ी कहीं नहीं है शान्ति
शान्ति ख़ुद तुम हो

जितनी देर तुम हो
उतनी देर समय है
शान्ति है

सिर पर बोझा लिये
जा रही है एक औरत
कन्धे पर हल धरे

लौट रहा है एक किसान
दौड़ रहा है ताँगे में
जुता हुआ घोड़ा

थोड़ा-बहुत निर्माण भी
कहीं नहीं है
निर्माण खुद तुम हो

जितनी देर तुम हो
उतनी देर निर्माण है
शान्ति है समय है

धर्म-पुस्तक के अनुसार
चलने वाला पशु
पशु के अनुसार

मुड़ने वाला रास्ता
रास्ते को ढांक कर रखने वाली
धूल सब कहीं है

तुम कहीं नहीं हो
जितनी देर तुम नहीं हो
उतनी देर समय नहीं है

निर्माण नहीं है
पूर्णता नहीं है
जितनी देर तुम हो

उतनी देर
समय है शान्ति है
निर्माण है पूर्णता है

■

काल-पुरुष

सब कुछ समा जाता है
काल के गाल में
द्वापर की अठारह अक्षौहिणी सेना

मिस्र की सभ्यता
रोम का साम्राज्य
कल का जन्मा हुआ

बच्चा
आज का
खिला हुआ फूल

गाल ही नहीं हैं मगर काल के
समूचा पुरुष है वह
हाथ-पाँव-नाक-कान वाला

खाता-पीता ही नहीं है
केवल काल-पुरुष
देखता-सुनता-समझता भी है वह

सेनाओं को
सभ्यताओं को
फूलों को बच्चों को

रचता है
सारता सँवारता है
सृजन-पटु हाथों से

ममता-भरे मन से
कल्पनाओं को
चीज़ों में

बीजों को बदलता है
वृक्षों में
वृक्षों को बीज

रोना इसी का है

जैसे हवा में अपने को
खोल दिया है इन फूलों ने

आकाश और किरणों और झोंकों को
सौंप दिया है अपना रूप

और उन्हों ने जैसे अपने में
भर कर भी उन्हें छुआ नहीं है

ऐसा नहीं हो सकता क्या
तुम से मेरे प्रति

नहीं हो सकता शायद और इसी का रोना है
या ऐसा भी किसी दिन होना है

तुम्हारे वातावरण में डाल दी है
कितनी बार मैं ने अपनी आत्मा

तुम ने उसे या तो अपने अंक में ही नहीं लिया
या फिर इतना अधिक भींच लिया है

जितना तुम्हें न पा सकने पर
मैं ने जीवन को छाती तक खींच लिया है

क्यों नहीं रह सकते हम
परस्पर
फूल और आकाश की तरह

यह नहीं हो सकता शायद और इसी का रोना है
या ऐसा भी
किसी दिन
होना है !

■

समय का पहिया

एकाध बार
जब तारे
सारे निकल चुकते हैं

और रात तरुण हो जाती है
और जब निश्चिन्त हो कर
ताक पाता हूँ मैं आसमान

और जब चिन्ता
अपलक जागरण में
खो जाती है

और जब पीड़ा और दुःख का
अहसास नहीं बचता
और जब सन्नाटे की लाठी पर

सो चुकता है बच्चे की तरह
दर्द
रुकता है तब जैसे

समय का पहिया
और मैं
शाश्वत हो लेता हूँ

देता हूँ तब मैं
समयहीन मन को
समयहीन बुद्धि

समयहीन वुद्धि को
समयहीन महत् तत्त्व
समयहीन माया और सत्ता

और शान्ति भी समयहीन
और लीन हो जाते हैं तब
तरुण तारकों के साथ-साथ

इस महाकाश में
वृद्ध और वर्द्धमान
अस्ति वस्तुचिद्घन प्रसूति कारण

मरण
और
मारण के

एकाध बार का हुआ यह
टिकता नहीं है लेकिन
शाश्वत किसी काल तक

ज्योतिपुंज महाकाश में
उगती है ज्वलन्त
कोई अनजानी सूरत

और जागती है
उस के साथ-साथ
चिन्ता

हमारी हर सुवह को
चिड़िया की तरह
जागता है दर्द रोज़ के जैसा
लेकर अँगड़ाई
वच्चा मन की
चीख़ता है ज़िन्दगी

और तब रुका हुआ पहिया
समय का
या भय का कहिए

घूम जाता है
जैसे एक झटके से
पूरा का पूरा

और नये सिरे से
नाचने लगता है
आँखों के आगे अपना सब-कुछ

याने सुख-दुख
अपना और दूसरों का
पास का दुखी-गाँव

और देख
आक्षितिज खमण्डल
उस का दुखी परिवेश

आज की हालत
कल तक का इतिहास
और फिर आसपास क्या

कहीं तक का कुछ भी
डूब नहीं पाता
सब कहीं मन में

बुद्धि महत्तत्त्व और माया में
सत्ता में
अस्ति वस्तुचिद्घन

प्रसूति कारण शरचण्ड
मरण और मारण के
छूटने लगते हैं

कोदण्ड से काल के
और विद्रोही मैं
भाल के अक्षरों का

ऐं-ऐं करते
रह जाता हूँ
शाश्वत काल

बाँध कर
किनारे पलों के
कल-कल वह जाता है।

◘

नाम का सूरज

शाम से शाम तक
याद नहीं आता तुम्हारा
नाम तक

ऐसा उलझ गया हूँ
इस नक़्शे में
इस चरखे में

सोचता हूँ अभी
नया-नया हूँ
यहाँ

जब कुछ दिन बीत जायेंगे
जीत जायेंगे तब
तुम्हारे नाम के अक्षर

उन की जयमाला
इस नये चरखे पर
माल की तरह चढ़ जायेगी

नाम के बल पर
नक़्शा तय होगा
चरखा चलेगा

तुम्हारे नाम का सूरज
मेरे अनुभव की किसी
शाम में भी नहीं ढलेगा

दुःख ने कहा

सुबह जो किरण निकली थी
वह सादी थी
शायद कमज़ोर भी थी

मगर मैं ने अपने दुःख से कहा
भाई तुम किरण से तो
आँखें नहीं चुरा सकते

शाम को जो पंछी लौटा
वह थका हुआ था
और गीत उस के कण्ठ में नहीं था

मगर मैं ने अपनी निराशा से कहा
हमें अपने डैने
इस तरह नहीं सिकोड़ने हैं

रात घनी हो गयी
तूफ़ान बहने लगा
प्राण दुःख के दामन को

गहने लगा
मैं सोच में पड़ गया
किस से क्या कहूँ

कि खुद मेरे दुःख ने सिर उठाया
और झझकोरा मुझे
कहने लगा

किरण की आशा
नीड़ का ख़याल
हर चीज को कठिन बना देते हैं

इस लिए तुम सिर्फ़ मुझे
पकड़े रहो
मैं जो सिर्फ़ शून्य हूँ अँधेरा हूँ

मैं जो न आकाश हूँ न नीड़
न आशा न निराशा
मैं ज़ो घना हूँ

मैं
जो शुद्ध अँधेरे का बना हूँ
मुझे पकड़े रहो !

■

शरीर और सपने

नसें तो नसें
हड्डियों तक में धड़कता लगता है
मुझे अपना दिल

तटस्थ क्षणों में विचार करने भर की सामग्री
नहीं मान पाता मैं
अपनी ही बीमारी के लक्षणों को

हर क्षण लगता है
समाप्त हुआ तो नहीं है सब कुछ

मगर
समाप्त होता है
ज़रूर चला जा रहा है

मैं ने ज़िन्दगी को शायद
इतना अधिक सपनीला
बना लिया था

कि पिघल कर रह गयी है
अब उस की सत्ता
अब मैं अपने सपनों को

थोड़ा भी वापस खींच कर
अपनी इस क्षण की
ठोस और सालिम और ऊबड़खाबड़

ज़िन्दगी के
सचमुच के होंठ चूमने की अपनी साध
पूरी नहीं कर सकता !

मैं ने सपनों से भरी
किसी एक ज़िन्दगी को इतना सोचा है
कि हाथ फैला कर आलिंगन के लिए

जब-जब कसा है किसी को
तो प्रायः ज़िन्दगी की
छाया को कसा है !

और इसी तरह
धीरे-धीरे वास्तव का सरूप
मेरे लिए छाया बनता चला गया है !

अभी सूरज निकल रहा है
नये दिन का साफ़-सुथरा सूरज
और आवाज़ें सचमुच की

पुकार रही हैं मुझे
मगर अब वापस लौटना भी चाहूँ मैं
तो लौट नहीं सकता

बहुत दूर निकल आया हूँ
सचमुच के देश से
और ताक़त का हाल यह है

कि नसें तो नसें
हड्डियों तक में धड़कता लगता है
मुझे अपना दिल !

शरीर मेरे
क्या तुम्हीं सब-कुछ हो तब
कुछ नहीं है कल्पना

और बुद्धि और आत्मा
तब कौन है यह
जो मेरी ओर से पूछ रहा है

और जवाब मिलने का
आभास जो होता है
सो कहाँ से होता है

कौन है जो बताता है बातें
कौन है जो छुपाता है जैसे उन्हें
मुझ से

तुम्हीं हो क्या ऐसे सर्वशक्तिमान्
और मीठे और वंचक
और शब्द ये

जो घुमड़ कर भीतर से उठते हैं
काटते हुए तुम्हारे ही किनारे
सो भी तुम्हीं से उठते हैं

और तुम्हीं में उठते हैं
और सर्वशक्तिमान् हे
अपराध माना है क्या तुम ने

सपनों के देखने में
तो सपने उठाता कौन है भीतर
किस पर डालूँ

अपने सपने देखने की जिम्मेदारी
और इस अपराध को धोने के लिए
किस देवता के आगे होगा

बलिदान इस सपने देखने वाले का
कौन पकड़ कर चोटी
काटेगा उस का शीश

और खून जो बहेगा
कौन होगा तुष्ट उसे पी कर
तुम

मगर तुम्हारी प्यास तो
कभी नहीं बुझी
किसी चीज़ से नहीं बुझी

क्योंकि बेख़बर
इतना नहीं रहा
तुम्हारी तरफ़ से भी मैं

कितना नाचा हूँ तुम्हारे इशारों पर
नौ मन तेल तक जुटाया है मैं ने
खुद अपने ही लिए

कि परिपूर्ण तुष्टि दे सकें तुम्हें
मेरे नाच की सुखस्फूर्त भंगिमाएँ;
मगर एक के बाद एक

दूसरे नाच के आदेश
देते ही गये तुम
और तब हार कर कहो

खीझ कर कहो
मैं ने सपनों को ही
ज्यादातर अपना माना

सपनों को पलायन मानते हो तुम
मैं वस्तुस्थितियों को बदलने का
एक उपाय मानता हूँ उन्हें

पलायन में
स्थिति को बदलने की इच्छा
कहाँ होती है

मेरे सपने तो
सच को शीशे में
उतारने की प्रक्रिया से कम नहीं थे

और इस लिए
वे न कायरता हैं
न अपराध

जैसे सरल रेखाएँ
बाँध सकती हैं
कुटिल से कुटिल क्षेत्रों को अपने में

ऐसा समा लिया था मैं ने
सत्यों को और तथ्यों को
अपने तरल सरल सपने में

पुराने और गये-बीते
निरुद्देश्य दिनों को
पसन्द नहीं आया

मेरा दूर देखना
और मेरे शरीर
तुम ने उन का साथ दिया

और नसें तो नसें हड्डियों तक में
धड़कता लग रहा है
मुझे अपना दिल

अपराध है अगर सोचना
और सपने देखना
तो तुम क्यों मिले थे मुझे

मिलता किसी मछली
मगर
या छिपकली का शरीर

जो तैरता रहता पानी में
बिना सोचे
पड़ा रहता रेत में

निगल लेता औरों को
सोचे बिना झनकारता रहता
अँधेरे में·

गुंजाता रहता जंगल
या चिपका रहता एकाग्र
किसी मैली-कुचैली दीवाल पर

तुम क्यों मिले थे मुझे
सांग और सम्पूर्ण
और लचीले

जिस के भीतर बुद्धि है
मन है, आत्मा है
इच्छा है

दूसरों से निभ कर चलने की ही नहीं
सब-कुछ निछावर कर देने की
दूसरों पर

आसपास को
और उस से आगे दूर-दूर तक
सब को

हँसते देखने की
क्यों मिली थी
प्रबल प्यास

पुराने गये बीते दिन चाहते हैं
कि जियूँ तो मैं अब भी
मगर देते रह सकने के लिए नहीं

गीत रह गाने के लिए
बन्धुओं के साथ
हँसने-हँसाने के लिए

आंधी और तूफ़ान
और पतझड़ में
निकल पड़ने के लिए नहीं

बैठे-बैठे सिर छुपाने
उदास होने
और रोने के लिए

भीतर की शक्ति
और स्नेह में
ना या हाँ कहने के लिए नहीं

क्रोध में
निषेध करने के लिए
दम्भ में स्वीकृति देने के लिए ।

■

अभिव्यक्ति शरीर की

एक वक़्त आता है
जब
अभिव्यक्त

नहीं होते हम
अपने
चेहरे से

उतने
होने लगते हैं
जितने

अपने
शरीर से
अच्छा लगता है

मुझे
वह समय
जब

हमारे
शरीर की शक्ति
आँखों की चमक

स्वर की धमक
खो जाती है
याने जब वह

हमारे निकाले
निकल कर
बरसे बादल

की तरह
सब की
हो जाती है

और हम
हो जाते हैं निढाल
व्यक्त होता है जब

शरद् के बादल जैसा
हमारा व्यक्तित्व
धूप में उड़ता है

हवा के झोंके से
धोखे से भी जिस पर
खिंचते नहीं हैं

किसी
सुबह किसी शाम
इन्द्र धनुष

काश कुश
बाजरा मक्का धान
किसी को

अब नहीं
सींचता वह
तैरता-भर है

आसमान में
इस छोर से
उस छोर तक

भोर से
साँझ तक
साँझ से भोर तक

छियासठवें दिन

एक साल बाद वह पन्ना खुला है
जिस पर साल-भर पहले
तारीख़-भर लिखी थी मैं ने ऊपर

और कविता
शुरू करनी चाही थी नीचे
क्या हुआ होगा

कि मन में आयी कविता
काग़ज़ पर नहीं उतार सका
रंग तो रंग

रेखा नहीं उभार सका
जहाँ चाहता था वहाँ
मन को

सम्भव है बड़ी कोई बात
आड़े न आयी हो इस के
बे-वक़्त आ कर

किसी रोज़मर्रा ने पुकार लिया हो
और क़लम बन्द कर के
उठना पड़ा हो उस के स्वागत में

फिर तो मालूम है
कि समूची यह डायरी
यात्रा में एक दोस्त के घर

छूट गयी थी
और अभी दो महीने पहले
भेजी है उस ने वापस

और इन दो महीनों में
मैं ने इसे खोला ही नहीं
सच कहो तो

बन्द किसी चीज से
पिछले छह महीनों में
मैं बोला ही नहीं

क्यों कि खुली पड़ी थी
मेरे सामने तब
साँपों से भरी एक गुफा

साँप जिस से हर पल
बाहर निकलते थे
और आते थे मुझ तक

और बिला जाते थे
आ-आकर बिला जाने वाले
ये साँप

प्रति पल मारते थे मुझे
प्रति पल
जिला जाते थे

क्यों कि तब तक मैं
मरने से डरता था
तब तक इच्छा करता था

मैं जीने की
और तब तक मालूम नहीं था मुझे
कि खुली पड़ी हुई गुफा से

छियासठवें दिन

निकल कर आने वाले
ये तेज़ और चमकदार
और काले

कितने मज़ेदार हैं
जाड़े की सुबह के भूरे कुहासे में
मैं ने उन पर

प्यास को तोहमत लगायी थी
मगर वे तो आते थे
माँगने मुझ से एक चुटकी-भर धूल

और जब वे देखते थे
कि मैं अपने प्राणों के पानी को सँभाले हुए
भयभीत हूँ

तो वे विला जाते थे
साँपों के मन का तर्क
उन के आने और विला जाने

की व्यवस्था
मैं ने छाती में बैठे हुए समय
और बाँस की साँस में समायी हुई

चिनगारी की तरह
किसी एक क्षण उन की आँखों में देखी
तो लगा

जैसे सूरज उगता है किसी फूल पर
और उस की
परवाह नहीं करता

ऐसे उग रहे हैं मुझ पर ये साँप
इन्हें मुझ से
कुछ लेना-देना नहीं है

न मेरे प्राणों की प्यास है इन्हें
न मेरी मन्त्रसिक्त
माटी की ज़रूरत

और मैंने उन की तरफ़ से
हटा के ध्यान
अपनी माटी को छुआ

तो देखा कि माटी
बनी है अब तक
और आज का दिन मेरा है

अब जब मैंने देखा
कि माटी बनी है
और आज का दिन मेरा है

तो खयाल आया
कि यह माटी तो
क़लम की धनी है

क़लम खोजी
और खोली यह डायरी
तो पिछला बरस

आँखों में तैर गया
और मेरे समूचे अस्तित्व ने
साँस ली

और कहा साँस ले कर
जैसा भी गया
खैर गया

तीन सौ छियासठवें दिन ही सही
क़लम कागज़ पर
दौड़ रही है

छियासठवें दिन

जैसे
नंगे-धड़ंगे बच्चे
वर्षा के पहले झले में

ठण्डी फैली अमर दूब
ज़िन्दा हरहराते झाड़
मुझे मालूम है

मेरी माटी
अभी साँपों को नहीं
तुम्हें चाहिए

ताकि तुम और अमर बन सको
और हरे हो सको
मैं तुम तक आ रहा हूँ

मगर अभी खयाल देने का नहीं है
लेने का है
मैं तुम तक आ रहा हूँ

कुछ देने के लिए नहीं लेने के लिए
तुम्हारी आग से
एक चिनगारी लेने

चिनगारी ज़िन्दगी है
ज्वाला मौत है
मैं अपनी ज्वाला से तंग हूँ

अपनी यह ज्वाला
मैं इस खुली गुफा के
मुँह पर धर कर

तुम तक आ रहा हूँ
तुम मुझे एक कण शक्ति
एक क्षण-चिनगारी

एक किरण कल्पना
एक कम्पन नये अंकुर का
देना

मैं तुम्हारी गोद में
सिर रख कर
स्नेही उन सांपों को धन्यवाद दूंगा

जिन्हों ने एक अवधि तक
प्रतिपल
मुझे जीवन की प्यास दी

विकल्प की धीरे-धीरे
सारी ताक़त छीनी
तर्क की वाणी को जैसे

पोंछ दिया
घिग्घी बँधवा दी संकल्पों की
और प्रेरणा को निढाल लापरवाही के

द्वारे ले जा कर बाँध दिया
मैं तुम्हारी गोद में सिर रख कर
स्नेही उन सांपों को

धन्यवाद दूंगा
जिन्हें न न्याय से मतलब है
न गंजी बहसों से.

जो माँ की घनी भावना ले कर
निकलते थे गुफा के गर्भ से
और मै ने उन्हें गोद में नहीं लिया

इस लिए वे बिला गये
और इसी लिए अब मैं
तुम्हारी गोद में आ रहा हूँ

ख़त्म नहीं होती हरी दूब
ख़त्म नहीं होता पेड़ों का हरहराना
मर कर मैं क्या करूँगा

खाली गुफा के सामने
मरना होगा तो हरी दूब पर
मरूँगा हरे झाड़ की छाया के नीचे

डायरी के पन्नों पर तब तक
सिर्फ़ तारीख़ नहीं
रहेगी

कविता की धारा बहेगी
अभी और कुछ दिनों
कुछ पहरों कुछ पलों

अलंकार के छलों से हीन
अदीन
और दूर छन्दों के शिकंजे से

गिनती में गण्य
पचपन बरसों की हथेली पर
मेंहदी रचायेंगे

बचे-खुचे शाश्वत पल
अदृश्य वर्षा के एक
बूंद की तरह कभी

टपक जाऊँगा मैं
किसी जलते भाल पर
समूचे काल पर तरजीह

देगा वह जलता भाल
उस एक बूंद को क्यों कि
ख़त्म नहीं होती हरी दूब

खत्म नहीं होती
झाड़ों की हरहर
खत्म नहीं होगा

टपक जाना
किसी बूंद का
कभी किसी जलते भाल पर

■

मैं जिन्हें देता हूँ

मैं जिन्हें देता हूँ
सचमुच तो उन से लेता हूँ
वे मुझ तक आते हैं

तो बरसाते हैं
मुझ पर स्नेह
उन के तरल वचनों का

मेह धोता है मेरे
गहरे से गहरे जमे
मसाल

जो वे लेते हैं मुझ से
सो ज़्यादातर होता है
मेरा वज़न

मन हलका होता है
उसे दे कर छोड़ कर
जोड़ कर जो रखा है वह कड़वा है

कम से कम मेरे लिए
मैं ने उसे जब चखा है
यही पाया है

यह जो आया है अभी
मुझ से लेने सो
आया है मुझे देने हलकापन

मेरा मन इसी से तो
अनजाने फूटा है गीतों में
मैं देना जो चाहता हूँ

सो तो दे ही नहीं पाता
जो दे पाता हूँ गीतों में भी
वह अक्सर होता है

पीठ का कन्धों का बोझ
जहाँ का तहाँ
रह जाता है वह तो जो

भीतर का है
भीतर से भीतर की
तह का है

मृत्युंजय शब्द

आँसू की तरह गरम
टपके उस के
दो शब्द

झपके-झपके खयाल
जागे और रूप
मन के आगे

दो शब्द गीले और गरम
दे गये भरम इतना
कि तब से अब तक

ख़ुश हूँ
काश-कुश कुछ नहीं गड़ते
गड़ाये

दो आँसू की तरह गरम
शब्द
मौत तक के आड़े आये

■

तीन परिस्थितियाँ

व्यक्ति थे पहले तुम
अब समय हो
आगे-पीछे
मुझ से या उस से
पल-दो-पल
हो जाओगे एक स्थिति ।

हल नहीं बचोगे फिर तुम
छोटी-बड़ी
किसी बात के
सोचे अलबत्ता जा सकेंगे
हल तुम्हारे आस-पास से ।

मरण के क्षण में

सांगोपांग के फेर में
जागे हम बहुत देर में
लगभग मरते-मरते

अब समझे कि नहीं हिचकतीं
जरूरतें
अधूरी-सी कोशिशों से

सांगोपांग की जिद
किसी को कुछ नहीं
करने देती

याने मरने के क्षण में
इस सन्तोष से
नहीं मरने देती

कि हम ने किया
अपने बस-भर
दे नहीं पाये बस-भर

चुटकी-भर दिया
जितना हम कर सकते इस पल
उतना कर दिया

■

सलाहन

ये दरवाजे
सिर्फ़ बन्द दरवाजे हैं
खुलते नहीं हैं ये

चाहो तो मत मानो मेरी बात
खुद आओ
खटखटाओ इन्हें

खटखटाओ
और
खड़े रहो

कान लगा कर सुनो
लगेगा कोई आ रहा है
खोलने इन्हें

खड़े रहो क़यामत तक
कोई नहीं आयेगा
इन्हें खोलने

ये दरवाज़े
सिर्फ़
बन्द दरवाजे हैं

मत नाहक जाओ
या आओ इन तक
इस से अच्छा है

भटकना खाली में शून्य में
कि इन तक आओ-जाओ
और खटखटाओ इन्हें

हाथ से या सिर से
और फिर रुक कर देखो
और आहटें लो

उस के आने की
जो दरवाज़े के पीछे
नहीं है।

चट्टानें

चट्टानें
सख़्त गोया जानें
हवा पानी

और धूप को
ऊपर-ऊपर
ओढ़ लेने वाली

काली ये चट्टानें
ठण्डी गीली या गरम हैं
कहने-भर को

पैदा हुई हैं ये
हर हालत में रहने
रहने-भर को।

■

गुलदस्ता

गुलदस्ता
मत रखो मेरे
सिरहाने

एक छोटा फूल
दे दो हाथ में
ज़्यादातर तो इस लिए

कि अब बहुत है
एक फूल भी
बल्कि फूल की पँखुरी

और थोड़ा इस लिए
कि बहुत है अब
गुलदस्ता मेरे लिए

आँख के इशारे पर

सूनी-सी शाम में
नीली-सी पहाड़ियाँ
कुहरे से ढँकी हुई

यह तो हुई एक तरफ़
दूजी तरफ़ बादल
गीले कपसीले

ढेर-ढेर ज्वाला जिन पर
देखा न भाला मैं ने
नाहक़ ही आ गया

आ कर खड़ा हो गया
सामने इस आग के
धुएँ के

दाहिनी तरफ़ खाई के
बायीं तरफ़
कुएँ के

ग़लती करता हूँ मैं
मान लेता हूँ जब
अपने को इन दिनों पहले-जैसा

पहले सुख देते थे दृश्य ये
अब नहीं देते सुख
सौन्दर्य अब

राशि-राशि सहन नहीं होता
एकाध किरण सूरज
एकाध फूल-पौधा

एकाध बूँद वर्षा
एक बार में
एक

बहुत हुआ तो दो दोस्त
इस से ज्यादा सुख
ज्यादा मिठास
कोई

रास नहीं आती अब
छाती को
एक बार में

जीवन की तेज धार में
पाँव नहीं टिकते
और तैर कर

आर-पार जाना-आना
सम्भव ही नहीं बचा
आना ही नहीं था मुझे

बिना सोचे-समझे
इतने बहुत से रूप के बीच
किरणों से लेलिहान

ज्वालामुखी बादल दल
कुहरे से ढँकी नीली वनराजि
सह भी जाऊँ

तो और-और
जो कुछ बिखरा है
जहाँ-तहाँ उस का क्या हो

बिलकुल ही सामने
ये जो करौंदे की झाड़ियाँ हैं
हरी और घनी

भरी फूलों से ख़ुशबू से लदी
वह जो धारा पतली
नदी की दिखती है

और मैदान-भर को
डाँटता-सा
जो ऊँचा हरा ताड़ है

वह और यह जो किसान
दिखता है डोलते हुए
हल के बैल

शैल मालाओं से ऊँचे
और सुन्दर
और और और

वे लौटती हुई
औरतें
खेतों की मेंड़ की

पगडण्डी पर से
जैसे शोभा के
आषाढ़ सावन भादों

सब साथ-साथ
बरसे
ग़लती करता हूँ मैं

मान लेता हूँ जब
अपने को इन दिनों
पहले जैसा

और कुछ नहीं है तत्पर
इतना सब सहने को
सिवा मेरी दृष्टि के

आँख का क्या है
इसे तो कुछ करना नहीं पड़ता
सिवा देखने के

न उसे सोचना पड़ता है
मन की तरह आगा-पीछा
न दौड़ना पड़ता है उसे

रगों में तेज़ी से खून की तरह
न धड़कना पड़ता है उसे
बेचारी छाती जैसा

दिया-बाती की तरह
जलाना चाहती है वह तो मुझे
हर तूफ़ान में

सौन्दर्य यह राशि-राशि
सहन नहीं होता अब
किसी को सिवा आँख के

आना नहीं था मुझे
सोचे-समझे बिना
आँख के इशारे पर

■

त्रिविध से अधिक विविध

बांस के वन में से
गुजरती हुई हवा
जैसा बोलती है

या बिलकुल सवेरे-सवेरे
बादल के दलों में किरण
जैसा रंग घोलती है

या जैसे आधी रात के
सूने में गहरी होती है
सुगन्ध

या जैसे अलस काले नाग में
बँध के रह जाता है
छन्द

वैसे बोलते हुए
रंग घोलते हुए
भरते हुए सुगन्ध शायद प्राणों में

बाँधते हुए छन्दों के बन्ध
शायद मृत्यु के बाणों में
आये हैं ये दिन

मैं
इन्हें
कहाँ सहेजूँ

■

क्या चाहती हो तुम

क्या चाहती हो तुम
मुझ से
भई, पुरानी यादो

आलम ठण्ड का है
और चुप कर दिया है
सख्त सरदी ने

गाते हुए अबाबील को
शलाका पंछी का स्वर
बुझ गया है

और सीमांशु सूर्य के अब
वैसे प्राणदायक नहीं लगते
हवा उत्तर की बहुत ठण्डी है

प्रश्नों के झीने आँचल में
सुख नहीं मिलता मन को
विजन में अच्छा लग सकता है

इस समय केवल
जला कर
मोटी-मोटी दो-चार लकड़ियाँ

ताकते रहना उन की झाँक को
इस समय जी नहीं होता
कि जवाब दूँ मैं

तुम्हारी किसी
चुनौती की
हांक के

थोड़ी सर्दी कम हो
तो चलूँगा लम्बी-लम्बी शामों में
तुम्हारे जुलूस के साथ

झुका कर गर्दन
बाँधे पीठ पर हाथ
समझता हुआ इशारे तुम्हारे

कभी पीछे
कभी आगे
कभी बीच में

यह तो ठीक है
कि मर सकता था मैं
पिछले बरस

सफ़दरजंग अस्पताल के
बिस्तर पर किसी दिन
नवम्बर की सख्त ठण्ड में

मगर इसी लिए क्या
मुझे तुम्हारे तमाम सवालों के
जवाब देने ही चाहिए

निकल गया वह झोंका
फाँस यम की
सधी की सधी रह गयी

बेचारे यम के हाथ में
कहते हैं स्वामिनाथन् साहब
बैठे रहे दो-एक रात

प्रार्थना में रत मेरे लिए
और मैं
किसी बात से कहो सँभल गया

आ गयी है अब यह
दूसरी ठण्ड की रित
और तुम चाहती हो

बरस-गाँठ मैं मनाऊँ
अपने उस क्षण की
सो भी क्षण दो क्षण नहीं

हफ़्तों तक लगातार
सोचूँ लिखूँ
साल-भर पुराने चेहरे

मित्रों के परिजनों के
और फिर उन से जोड़ कर
दिखाऊँ तुम्हें

टूटे अपने
खूब पहले के सुखों को
दुखों को

एक तो ऐसा करना मुझे
कभी भाया नहीं
गतं न शोच्यं का

मेरे मन पर गहरा असर है
लौट कर न देखने में मुझे ज्यादा तुम लगती है
सिंहावलोकन

कुल मिला कर
हिंसा का परिणाम है
चिह्न है भय का

दूसरे छन्द भय का
मुझे आन्दोलित नहीं करता
मर जाता पिछले बरस

तो क्या होता
और जब नहीं मरा हूँ
तो अब क्या होना चाहिए

उछाल-उछाल कर इन प्रश्नों के
बनाना गोले
नाहक़ का खेल है

मैं ने जी कर
पचास-पचपन बरस
क्या किया है

बचपन में
जवानी में या थोड़ा ढल कर
जवाब देने ही लगूँ इन प्रश्नों के

तो दे सकता हूँ
ठीक-ठीक
बिना लज्जा से गड़े

क्योंकि बड़े पाप
नहीं हुए मुझ से
और न बड़े कोई पुण्य ही

कि उन का पछतावा होता
जागता किये से इन के कोई दर्प
थोड़ा-बहुत पढ़ा है

थोड़ा-बहुत लिखा है
ब्याह कर दिया था पिता ने
सो बच्चे हुए हैं पाँच

क्या चाहती हो तुम

और सब अच्छे हैं
पढ़ा दिया था पिताजी ने ही
बैठाल कर गोदी में

कुछ ढंग का
सो हज़ार दो हज़ार
कविताएँ हो गयी हैं

मगर जैसे
जब पिता जी जा रहे थे
और मैं लाचार

उन के बिस्तर के पास
खड़ा हो कर उन के सिरहाने
देखता रह गया था उन्हें

वैसे अगर पिछले बरस मैं चला जाता
तो देखते रह जाते मुझे
मेरे बच्चे

और मेरी कविताएँ
वे तो कुछ ऐसी नहीं हैं
कि मुझे देखतीं मरते हुए

मैं अलबत्ता
देखता रहा हूँ उन्हें
पैदा होते,

पलते-बढ़ते
दिन काटते
या मरते धीरे-धीरे

थोड़ा कलक बच्चों का
थोड़ा परिवार का
थोड़ा दोस्तों का

ज्यादा कुछ पत्नी का
सोचता हूँ
मगर विस्तार में नहीं जाता मैं

इस सोच के
क्यों कि सचमुच जितना हुआ है
उस से अधिक

होता रहा है
जब से हुई है दुनिया
तब से

दुनिया के खयाल में
ब्याह के पहले
कई बार लगातार

एक सपना देखा था
अजीब एक साफ़
रात देखता था मैं सपने में

और सपने में देखता था
चाँदनी से धुला
एक अजीब साफ़ बगीचा

और चाँदनी से धुले बगीचे में
फूल तोड़ती हुई
एक लड़की

जो न मुझ से बोलती थी
और न मैं
जिस से बोलता था

बार-बार
दिखता रहा
यह सपना

हर बार एक-सा
और
इतना ही

फिर ब्याह हुआ
तो लगा
जिस से हुआ है ब्याह

यह तो वही लड़की है
सपना सच हुआ
मगर सपने के सुख को

पाने की इच्छा नहीं जागी
बिताते रहे हम दोनों
सपनों से अनजान

अपने सीधे-सादे दिन
करते रहे
हाथ में पड़े काम

और एक दिन
जाने किस खयाल में
पूछ लिया सरला ने

तुम्हारे सब से अच्छे दिन
कब बीते थे ?
थोड़ा अकचका गया

क्यों कि यह तो कैसे कहता
कि वह एक सपना था
जो जब सच हुआ

तो मैं बेखबर हो गया उस से
और लग गया
रोज़मर्रा में

कैसे कहता
सब से बड़ा सुख
सपने में मिला था

सच यही है
मगर इस सच को कभी मैं ने
दुख नहीं बनने दिया

और ले लिये इस लिए उस दिन
सवाल के जवाब में
सरला के दोनों हाथ

हाथों में
और देखा हम दोनों ने चुपचाप
एक दूसरे को थोड़ी देर

उस थोड़ी देर को
पूछती हो तुम
और पूछ कर चुप नहीं रहना चाहती

मेरी और सरला की तरह
यह क्या चाहती हो
मुझ से तुम भई पुरानी यादो !

आखिर
मीज़ान ही तो होता है अन्त
अथ से अब तक का

अन्त जो है
सो सामने है
आलम ठण्ड का है

चुप कर दिया है उस ने
गाते हुए अबाबील को
बुझ गया है

अलाका पंछी का
स्वर
कर-जाल सूरज के

प्राणदायक नहीं लगते
हवा उत्तर की
बहुत

ठण्डी है
प्रश्नों से
बचता है मन

यायावरी

भाई पाँवो
गाँवों-गाँवों फिरने की
ज़िद छोड़ो

टहलो अब धीरे-धीरे
यहीं कमरे में
या कमरे के बाहर ज़रा

लॉन में
यात्रा गीत-गान में
करो

बचाओ चलने का
श्रम
सचमुच चलने का

क्रम खत्म हुआ
पहुँचोगे अब तुम
कहीं नहीं

टहलोगे थोड़ा-बहुत
यहाँ-वहाँ
कुछ बज कर

कुछ मिनिटों पर चलोगे
रुक जाओगे कुछ बज कर
कुछ मिनिटों पर

बोलो वचन देते हो
जितने बजे निकलने देंगे
लोग

उतने बजे निकलोगे
जितने बजे चाहेंगे वे
लौट आओगे

भाई पांवो
गाँवों-गांवों फिरने को
ज़िद छोड़ो

बन्द
करो
यायावरी

रथ-प्रतीक

सूखी डाली जैसे किसी हरे पेड़ को
पेड़ से कट कर ही हो सकती है काम की

मेरे उदास खयाल लगभग उसी तरह
तापे जा सकते हैं दूर कहीं
हँसी-खुशी की महफ़िल से

मैं नहीं चाहता
सुख से भरे मन उन्हें बाँचें
आराम से बैठे
आलोचक उसे जाँचें

थोड़े-बहुत जतन से
दे कर आड़ हाथ की शरीर की
सुलगाया जा सकता है उन्हें
और फूँक-फाँक कर पैदा की
जा सकती है उन में आँच

और लगे रह कर थोड़ी देर
जगायी जा सकती है उन में
सपनों की एक झाँक
और आरपार देखा जा सकता है
अपारदर्शी
इस उदासी के

खूबसूरती के पुजारी
फूलों से खिंचे मन
फ़िलहाल मुझे न पढ़ें
प्रतीक जो मुझे मथ रहे हैं
उन्हें भी मथेंगे आगे-पीछे
क्यों कि महा पथ पर क्षण दो क्षण
ये प्रतीक सब के रथ रहे हैं।

□

नयी तसवीर के लिए

ख़ून से तर गीत
तसवीर हैं मेरे जनम की

तसवीर करम की
पसीने में डूबी हुई है

जनम और करम के बीच की भी
एक तसवीर है

आँसुओं में घोले गये थे
इस के रंग

अलबत्ता
निस्संग भाव से

चित्रकार मेरे जनम और करम और उन के बीच का
इन दिनों

न ख़ून से ख़ुश है
न पसीने से

न बोलता है वह
आँसुओं में रंग

तंग गलियों की बदबू
और अँधेरे को

इकट्ठा कर रहा है वह
मेरी किसी नयी तसवीर के लिए

■

मरण का वरण

मैं नहीं करूँगा तुम्हारा
आलिंगन
जिस तरह सब करते हैं

किसी सजे-सजाये कमरे में
घिर कर किसी सुगन्ध
या कोमलता से

न लता के मण्डप में
न किसी आम्र-कुंज में
ज्योति-पुंजों में

अब मुझे न चन्दा से आशा है
न अनगिनत तारों से
ऊब गया हूँ मैं अब

इन सारों से
और इस लिए
बिलकुल वीरान और बंजर

कोई जगह चाहिए
और रित ऐसी सख़्त सरदी की
कि सिर्फ़ मैं ही नहीं

तुम भी उदास हो जाओ
और कांपो
थर-थर

जहां ठिठुरें और डरें हम दोनों
जहां मैं भांपूं तुम्हारी मरज़ी
तुम मेरी हालत भांपो

■

एक और सम्भावना

हो सकता है यह तो
कि ऊब जायें हम
उदासी से भी

लगभग दो बरस से
कट कर रहते आये हैं
सरस से

कुछ ज़रूरत
कुछ डर के मारे
उतरा हुआ चेहरा

वना तो हम दोनों
उदासी भी छोड़ देंगे
मगर तब

मिलेंगे दो छोटे-छोटे
वच्चों की तरह
जो मुग्ध किसी बात पर नहीं होते

उत्सुकता और भय
जिन्हें फिर भी
अपने में डुबा लेते हैं

जो लुका-छिपी का खेल
खेलते हैं अँधेरे में
और पीछे पड़ जाते हैं

अभी छू कर एक-दूसरे को
चिल्लाते हैं
अभी हँसते हैं अभी लड़ जाते हैं

■

क्रन्दन थोड़ा प्राचीन

यह बात ज़रा प्राचीन हुई
उतनी नयी नहीं
जितनी तुम चाहते हो

बहुत नया तो कुछ भी
मुझे कब से नहीं छूता
मौसम नये

छूते रहे हैं
मगर इस लिए कि वे
नये होते हैं लौट-लौट कर

इस लिए नहीं
कि कोई अनजाना नयापन
होता है उन में

ख़ूबसूरती का खिंचाव भी
इसी लिए माना है मैं ने
कि वह पुरानी है

और चली आती है
चली आने वाली चीज़ें ही
अर्थ देती हैं कुछ दूसरी चीज़ों से जुड़ कर

अगर पुराने शब्द
पुराना कोई अर्थ ही न दें
तो क्या करूँ मैं

अपनी नयी से नयी कविताओं का भी
आंसू हम आसमान की ओर
देख कर गिरायें चाहें तो

मगर उन्हें बना कर वाष्प
उड़ाना न चाहें आसमान में
टपकायें उन्हें

किसी आंचल के छोर पर
या धरती पर
या बहने दें अपने ही गालों पर

चुपचाप
आंख की कोर से
कानों तक

यह बात ज़रा प्राचीन हुई
मगर मैं इसे
अनायास होने के कारण

पसन्द करता हूँ
और चाहता हूँ आंसू मेरे
टपकें धरती पर

नया इतना ही चाहता हूँ इस में
कि धरती बंजर हो
गिरें जहाँ आंसू

न बनायें वे कोई कविता
वहाँ उग कर न बनायें कोई
लता-मण्डप न आम्रकुंज

ज्योतिपुंज मेरे आंसू
विलीन होते रहें निकल कर

नये सन्दर्भ की चिनगारी

पुराना और कठोर जैसे स्फटिक
हर चोट पर
फेंकता है नयी से नयी चिनगारी

ऐसी
जलाने और सुलगाने
के गुण में और चमक में

और सौन्दर्य में
पुरानी आदिम
चिनगारी की तरह

फिंकना चाहिए
अर्थ पुराने से पुराने शब्दों में से
नये सन्दर्भों में

मेरा आज का मन
एक नया सन्दर्भ है
मगर ऐसा नया भी नहीं

कि लगाव न हो उस का
किसी पुराने के साथ
लगाव के बिना

कुछ भी नहीं रह सकता
विच्छिन्न कुछ भी रह सकता
तो दिखतीं कई चीज़ें विच्छिन्न

क्यों कि मन तो होता है
कई बार बिलकुल विच्छिन्न
जी सकने का

या मर सकने का विच्छिन्न
मगर रहता कोई
खिन्न से खिन्न

या प्रसन्न से प्रसन्न
विच्छिन्न नहीं है
सन्दर्भों से

सन्दर्भ पुराने हो सकते हैं
नये हो सकते हैं
यह संयोग है

कि मन मेरा
आज
एक नया सन्दर्भ है

मगर फिकना तो चाहिए
पुराने ही शब्दों से
नये इस सन्दर्भ की चिनगारी

■

आँगन से आसमान तक

मेरे आँगन के पेड़ से
उड़ कर
छोटी-सी एक चिड़िया ने

जुड़ कर आसमान से
मुझे
इस छोर से

उस छोर तक
पहुँचा दिया
ऐसा मेरे साथ

कभी
इस ने किया
न उस ने किया !

और फिर अँधेरा घिर गया
मेरा यह खयाल
उस घने अँधेरे में

कहीं गिर गया
और अब
ढूँढ़े नहीं मिल रहा है

आँगन से
आसमान
तक

■

जानता हूँ

अभी जीवन
कम-ज्यादा छन्द है
साँसों का कम-ज्यादा

मगर किसी नियम से घटना-बढ़ना
छाती का कम-ज्यादा
मगर धड़कते रहना

बन्द भी आँखों का जलन
सपनों में लहर-लहर
उड़ना विचारों का

हिलना हाथ पाँवों का
अभी सब
छन्द है कम-ज्यादा

जानता हूँ
संगीत हो जायेगा जीवन
जब शरीर से

छूटेगा यह
कण्ठ से छूटे
स्वर की तरह

धड़कनें बदल जायेंगी
मूर्च्छना में
साँसें हो जायेंगी लय

प्रलय की नदी में
तरंगें पैदा करेंगे
डाले गये हाड़

सरसराते हुए किनारे के
वन के साथ
गूँजूँगा मैं वर्षा में तूफ़ान में

अभी जीवन छन्द है
जानता हूँ
शरीर से छूट कर संगीत हो जायेगा यह

अनुमानतः

शीत से
वसन्त जितना दूर है

बूँद से दूर है जितना
मोती

या कहो
दूर है जितना फूल से फल

उतनी ही दूर है अब
मेरी देह से आग

आग से राख
राख से गंगाजल !

याने

याने
तुम्हीं नहीं हो सब कुछ
भाई
हवा
और
किरण
और फूल

कविता
तुम्हीं से घिर कर नहीं
इस तरह
बिस्तर पर गिर कर भी
लिखी
जा सकती
है

याने
मौत का भी
एक मज़ा है

■

विकास-क्रम

रुपहलों से शुरू किया था
सुनहरों तक
पहुँच गये थे रंग

फिर फीके लगने लगे वे
उन्हें लाल किया
फिर किया नीला-पीला

और-और की मगर लीला ऐसी
कि अब नहीं फबता
काले के सिवा कुछ

कुछ नहीं घुलता अब
घोले से मन में
हवा में फूल मे किरण में सब में

¤

चुप्पी गायेंगे

दिन गाने के होते
तो गाते हम
सुबह से रात तक
रात से सुबह तक
गुँजाते हम
आसपास दूर-दराज़ का सूनापन
शोर तक के ऊपर
छा जाते हम दिन गाने के
होते तो गाते हम
अवाक् देखने को
देखते रहने की घड़ियाँ
मगर जब आ गयी हैं
तब वह भी बतायेंगे करके
लगभग चुप्पी गायेंगे
भर देंगे हम शोर के ऊपर सूनापन
दूना मन कर देंगे हम
सिर पर टूटती तकलीफ़ों का
ऐसे
करते ठीक गाने के दिनों का
जैसे
गा कर मुक्त कण्ठ से

आम तौर पर

शाम शरद की
आम तौर पर मैं देखता हूँ
तो देखता हूँ जैसे कोई एक सपना

और लगता है वह उतर रही है
मुझ पर नहीं
किसी और पर

शाम शरद की
आम तौर पर मैं सोचता हूँ
तो सोचता हूँ जैसे कोई एक खुशबू

और लगता है वह घिर रही है
मुझ पर नहीं
किसी और पर

शाम शरद की
आम तौर पर मैं गाता हूँ
तो गाता हूँ जैसे कोई एक याद

और लगता है वह लौट रही है
मुझ पर नहीं
किसी और पर

आम तौर पर !

■

अधूरे चाँद के डूबने का दृश्य

ताक़त देता है
अधूरे इस चाँद के डूबने का
दृश्य

मज़े में नीचे जा रहा है
उतने ही मज़े में
नीचे जा रहा है

जितने मज़े में ऊपर उठा था वह
अभी कोई दो घण्टे पहले
वहले हैं मेरे दो घण्टे

उस की बेफ़िक्री देख कर
अभिषेक करता रहा है यह दृश्य
नाम-हीन मेरे किसी तोष का

पहले चढ़ते हुए
और उतरते हुए अब
दोनों बार

आकाश की मेहरावों पर
समान सुख से लपेटी हैं
किरणें उस ने

समान सुख से बाँधे-खोले हैं
उस ने प्रकाश-तोरण
निशा के द्वारे

सँवारे हैं दोनों वार
हरे गहरे पानी पर
सूरज से कहीं ज्यादा प्रतिविम्ब

शायद सूरज से ज़्यादा
जानता है वह
अस्ताचल के दोनों ओर फैले हुए

जीवन को
तप्त जो नहीं होता कोई उस में
सब निहारते जो हैं उस को ओर

उस से बातें करते हैं
सब देते हैं उस को
अपनी छोटी-मोटी खुशियां

और
लेता है वह उन खुशियों को
मानो कृतज्ञ-भाव से

शायद जानता है वह पूरा-पूरा
अस्ताचल के दोनों पार के लोक को
उस के सुख को, शोक को

जानता है वह
सारे प्रकाश और अन्धकार
के दाताओं को

सूरज और ग्रहों के रंग
उस ने पिये हैं
सागर और नदियों में

जीवन के बिम्ब तक
उस ने जिये हैं
अँधियारे को उस ने

किसी पोशाक की तरह
पहना और उतारा है
सपने की तरह

तूफ़ानों को देखा है उस ने
सँवारा है माथे पर
ताज की तरह उस ने

उल्काओं को
और जानता है वह
अस्ताचल के दोनों ओर

जो वेदियाँ हैं बलिदान की
उन के बारे में
कई बार बाँधा गया है वह

दोनों ओर के यूप-स्तम्भों से
भिगोयी गयी है कई बार
दोनों ओर की धरती

उस के श्वेत रक्त से
तभी तो वह
न उल्लास से हीन

ऊपर उठता है
न हताश भाव से
जाता है नीचे

खींचे रहता है वह
अपने रथ-अश्वों की वल्गा
आश्वस्त इस ढंग से

कि चढ़ते हुए उदयाचल
थकते नहीं हैं उस के अश्व
न हाँफते हैं उन के वक्ष

न भय होता है उन की आँखों में
ढीले नहीं पड़ते उन के पाँव
चढ़ते-उतरते

कनौटी उन की व्यस्त नहीं होती
अंक में बैठे हुए
सहज भीरु मृग को भी

भीत नहीं होने देता वह
शक्ति देता है मुझे यह विचार
सूने मन में

लौटते-से लगते हैं
भरे-पूरे आदर्श
अँधेरे में तर्क की चिनगारी

और व्यवस्था की कलियाँ-सी
खिलती हैं
मेरे भीतर के गुलाब

और इन्द्रधनुष
और ओस की बूँदें
उतने घायल नहीं लगते धूप के

कूप-जल की तरह
बँधा हुआ नहीं है शायद
शक्ति का स्रोत

पतझड़ के झोंके में
शरीर का अश्वत्थ
जो नंगा हो गया था

फेंकता लगता है कोंपलें
एड़ी से चोटी तक
पंख उगते हैं जैसे

हिम्मत की चींटी के
शक्ति देता है मुझ को भी
अधूरे इस चाँद के डूबने का दृश्य

में जो खिसल रहा हूँ प्रति पल
किसी दीवार पर टँगी
रेत की घड़ी के जैसा

कुछ खबर नहीं है मुझे
अपने अस्ताचल
और उदयाचल के पार की

मेरे ज्ञान और अज्ञान
दोनों के पाँव मिट्टी के हैं
काँच के हैं

सूरज और ग्रहों
सागरों और नदियों और
उल्काओं का अपनी

कुछ भी नहीं जाना मैं ने
न किसी से मुझे कुछ मिला
न दे पाया किसी को कुछ

कोई कहानी ही नहीं बनी
रेत की घड़ी जैसे जीवन को
उस समय भी

जब उड़ती रहती है हँसी
किसी पंछी की तरह
वन-भर में

फूल झरते रहते हैं जब
नीली नदियों की खुली अँजुली में
तब भी

खिसलता रहता हूँ मैं
दीवार पर टँगा-टँगा
ऊपर के काँच से नीचे के काँच में

ताक़त देता है
फिर भी
अधूरे इस चाँद के डूबने का दृश्य

हास्यास्पद लगता है
दीवार पर ही सही
अपने ऊबने का दृश्य

□

रात की हर घड़ी में

सन्नाटे की तरह

स्तब्ध हो गये हैं
बुद्धि के पंख मन के आकाश में

बहुत ऊपर उठ कर
मँडरा रहा है
मेरा अस्तित्व

आज की रात
और कल की रात
और एक-एक रात की

एक-एक घड़ी में
नीचे गहरी नीली
नदी बह रही है

रात से ज्यादा गहरी
रात से ज्यादा नीली
और मुँह ताक रहे हैं

उस में जैसे
अपना ही
तारे नीले-पीले

रोज़ देखता हूँ रात-भर
कि नीला आसमान
खींचता है

अपनी सारी नीलिमा
इस नीचे
बहती हुई नदी से

जैसे खींचता है
कोई वृक्ष
अपनी हरीतिमा

धरती के
पेट में
डाल कर जड़ें

मैं किस से क्या खींचूं
इस तरह
हवा में टँगा-टँगा

धूल और माटी का
बना हुआ मैं
किसी भूल में तन गया हूँ

इतने ऊपर
और सन्नाटे की तरह
स्तब्ध हो गये हैं मेरी बुद्धि के पंख

मँडरा रहा है
मेरा समूचा अस्तित्व
आज की रात

और कल की रात
और एक-एक रात की
एक-एक घड़ी में !

■

सत्याग्रह

सो नहीं होगा
चोग़ा
रात का

काली रात का
तुम नहीं
मैं पहनूंगा

खुम नहीं लगाऊँगा
मैं अपने ओठ से
तो वह खाली

कैसे होगा
चोग़ा
काली रात का

तुम नहीं
मैं
पहनूंगा

पानी चेहरे का

हवा चेहरे पर से
ऐसी वही
जैसे वही हो पानी पर से

तरंगित-सा हुआ चेहरा
और जैसे
नीचे डूब कर चेहरे से

तरंगों ने और-और
गहराइयाँ छुईं
इच्छाएँ हुईं

बीमार इच्छाओं को
हाथ दिया मैं ने
पूछा बाहर चलोगी घूमने

और तभी किसी ने
खोले और-और दरवाज़े
और-और खिड़कियाँ

और हवा चेहरे पर से
ऐसी वही
जैसे वही हो पानी पर से !

■

विगत का दर्प

यह जो मैं लिख रहा हूँ
सो असल में मैं लिख नहीं रहा हूँ
वक़्त काट रहा हूँ

मगर इस तरह
कि कोई कह न पाये
कि यह आदमी भी

वक़्त काटने लगा
यह आदमी जो
वक़्त काटते हुए लोगों को

देख कर हँसता था
और कहता था कि
वक़्त क्या कोई सूखे आम

या इमली या बबूल का तना है
या वक़्त कोई कपड़ा है
किन्हीं लाल-पीले धागों का बना

कि तुम उसे क़ैंची से या
कुल्हाड़ी से काटते हो
अरे वक़्त तो ज़िन्दगी का नाम है

और वह काटने को नहीं
जीने की चीज़ है
अकेले और दस-बीस के साथ

अभी समुद्र के तट पर लहरें गिनते हुए
अभी नदी की धार में चीरते हुए
लहरें

अभी फूल को निहारते हुए
अभी हारते हुए थकते हुए
नींदते हुए गोड़ते हुए फूलों की क्यारी

यह आदमी जो जिन्दगी की
तसवीरें खींचता था शब्दों में
और कई दूसरे ढंगों से

जो रँगता था अपनी बनायी हुई
तसवीरें
हमारे रंगों से

और हम तक खुश हो जाते थे
हम जो एकाएक
किसी चीज पर खुश नहीं होते !

मगर फिर भी यह सच है
कि मैं जो लिख रहा हूँ
सो लिख नहीं रहा हूँ

वक़्त काट रहा हूँ
अब मुझे वक़्त के हर क्षण में
दिलचस्पी नहीं बची

अब मैं किसी कमल या गुलाब
या जासौन के फूल को
न निहारना चाहता हूँ न बोना

याने अब मैं
न कोई क्षण पाना चाहता हूँ
न खोना

पाने और खोने की प्रक्रिया से
उदासीन हो चुका हूँ मैं
और बचे हुए क्षणों में

अगर वे बचे हों हैं
इतना ही चाहता हूँ
कि कोई पकड़ न पाये

कि यह आदमी
वक़्त काट रहा है !
क्यों कि

आखिरकार
वक़्त को जीने का
क्षण-क्षण जीने का

आदर्श
मैं ने अपने सामने रखा था
और उसे

मैं सचमुच जीने की चीज़
मानता था
लेकिन देखता हूँ

वह एक आदर्श ही था
और आदर्श शरीर रहते
मुट्ठी में नहीं आता

या एक शरीर में रहते हुए
प्रकाशित नहीं हो पाता
वह अखिल में

शरीर थकता है
तो मन कहो आत्मा कहो
थकने लगती है

बुद्धि तो ओछी चीज़ है
बकने लगती है
इस लिए मैं बुद्धि को ताक़ पर रख कर

लिख रहा हूँ
कि बुद्धि ताक़ पर रखी रहे
और रंगहीन इन क्षणों में

कल्पना करती रहे कुछ खिलवाड़
यों
कि आने-जाने वाले

मुझे खयाल में डूबा समझें
ऊबा न समझें ज़िन्दगी से
जिस से मैं सचमुच ऊब गया हूँ

चाहता हूँ इस से पीछा छूटे
तो टूटे कोई नया तारा
किसी अनजाने आकाश में

लगा कर महानाश में
डुबकी
किसी नयी देह का मोती पाऊँ !

क्यों कि देह तो
पाना चाहता हूँ मै फिर से
रहा-सहा वक़्त निकल जाये

कल्पना से खिलवाड़ में
और नया फिर मिले देह
बेशक़ आदमी का

कि रही-सही सावें
पूरी करूँ
ताज़े और टटके

नये देह के
माध्यम
से !

साधें अभी काफ़ी बची हैं
मगर सब से बड़ी
बची है जो साध

वह अबाध
कोई बात कहने को
बची है

अबाध ठीक बात
कही जा सकती है
केवल अबोध ठीक कविता में

वही कहने के लिए
ज़िन्दगी जीता रहा
और वही कहने के लिए

अब चाहता हूँ
नयी एक ज़िन्दगी
नया एक देह

और नहीं जीना चाहता
बचे क्षणों को
उन्हें सिर्फ़ काटना चाहता हूँ

क्यों कि कहते हैं
साँसें तो गिनी हुई हैं
गिनी साँसें खींचनी पड़ती हैं

मगर दम्भ कहो
दर्प कहो
दावा कहो अपने ही विगत का

बची साँसों को
लिखते रह कर
खींचना चाहता हूँ

और फ़िलहाल आने-जाने वाले मुझे
ख़याल में डूबा समझें
ऊबा न समझें ज़िन्दगी से

■

अशुभ-शुभ

कल
आंसू की तरह
टपक कर फल ने

हलका
कर दिया
पेड़ को

बगीचे की मेड़ को
जाने क्या हुआ
दरक गयी

पेड़ पर बैठी चिड़िया की
बायीं आंख
फरक गयी

■

देखते रहो

लाल है चाँद का रंग
कुहरे से भरे
आसमान में

रुको और थोड़ी देर
देखो इसे यों
कि गहरा उतर जाये

यह दृश्य
मन में भीतर
और उभर आये

कोई ठीक
शब्द-समूह
इस दृश्य को

भीतर से सदा जोड़े
रह सकने वाला
दृश्य को कह सकने वाला

चलते-फिरते
पैदा नहीं होता
दृश्य को कहना है

तो रुको
और देखते रहो
कुहरे से भरे

इस आसमान में
लाल रंग का
चांद !

शब्द-समूह वह
और चांद यह
मिल कर

पोंछ देंगे
कितने ही बहते हुए आंसू
और आंसू

जो उमड़ रहे हैं
अभी निकले नहीं है
थम जायेंगे

रुको और
देखते रहो
लाल

इस चांद का रंग
कुहरे से भरे
आसमान में !

तोड़ो चमत्कारों में पड़ी गाँठें

मेरे सामने
टूटे पंखों से भरा
एक मैदान है

ऊपर मेरे सिर के
दिखता है आसमान
सूना तैरते पंखों से

दुर्वाच्य अंकों से
भाग्य के भाता था जिन्हें
लड़ना

मारे के सारे ऐसे हो ये पंख
तैरने के बजाय
आसमान में

टूटे पड़े हैं
मृत्यु से भी अधिक शान्त
एक लम्बे-चौड़े मैदान में

और तुम नितान्त सभ्य
बैठे हो निश्चिन्त
अपने सजे-सजाये कमरे में

न मैदान में निकलते हो
न झाँकते हो खिड़की से
पंख-विहीन

आसमान
का
सूनापन

सतर्क अपने दिमाग़ को
उस तरफ़
जाने ही नहीं देते

जहाँ तोड़ रहे हैं दम
या जहाँ ठोक रहे हैं दम
खम लोग

निर्भय भाग्य के
आमने-सामने खड़े हो कर
समझ में नहीं आता

इतने बड़े हो कर
क्या करोगे तुम
क्या कभी नहीं मरोगे तुम

फिर मरने की
सोचते क्यों नहीं हो
किसी बात पर

रात-भर
अपनी ही छाती का
काल्पनिक दर्द

जगाये जगत-भर में
क्या दोहराया करते हो कुछ
गीतनुमा

घुमाया नहीं जाता शून्य को
शून्य में इस तरह
जिस तरह तुम घुमाते हो

न-कुछ दर्दों की
अपनी कल्पना
बना-बना कर गीत

और गान और रूपक
और कविता
सविता-पंखों की

अगर आसमान में नहीं है
तो
हो नहीं जायेगा क्या अँधेरा

और ठण्डा और प्राणहीन
समूचा वातावरण
मरण तब क्या

तुम्हारे बन्द कमरे को ही
छोड़ देगा
तोड़ क्या नहीं देगा

अखिल का अँधेरा
तुम्हारी झूठी कल्पनाओं की
झनझनाती हुई शृंखला

कमरे में मैं भी पड़ा हूँ
मगर फ़र्क़ है तुम से मेरा
पंखहीनों का साथी हूँ मैं

और देख रहा हूँ
सामने के मैदान
और आसमान को खोल कर खिड़की

मेरे पंख
टूटे हुए पंखों के बीच
पड़े हुए हैं

और मन तुले हुए डैनों के
साथ है
मैं तुम्हारा साथी हूँ

हो नहीं सकता
अन्तर है मेरे शब्दों
और तुम्हारे शब्दों में भी

तुम्हारी कला ठण्डी है
मैं उस के पास भी नहीं
फटक सकता

क्यों कि मेरे पास
न कमीज़ है न बण्डी है
खुले बदन

ठण्डी कला के पास
जाना भी चाहूँ
तो बनेगा नहीं मुझ से

तनेगा नहीं मुझ से
चाहूँ तो भी
कोरी चतुराई का वितान

स्त्रीलिंगी तिस पर तुम्हारी तुकें
गर्भाशयहीन हैं
जितनी दीन

हो सकती हैं ऐसी चीज़ें
ये उन से भी
दीन हैं

इस लिए कहता हूँ
डैने मत चुराओ
फैलाओ इन्हें

तोड़ो चमत्कारों में पड़ी गाँठें

अक्षत इन के बल का
कुछ भी नहीं है अर्थ
मैदान में

टूट कर गिरने वाले पंख
व्यर्थ नहीं हैं
व्यर्थ है अलबत्ता

पंखहीन आसमान
इतने सजे-सजाये कमरे में
बन्द करके सारी खिड़कियां

बाहर की आवाज़ों से
बचते हुए मन को
मत रमने दो

ऊँचे ही सही
किसी छूंछेपन में
तूफ़ानों के थमने का

रास्ता मत देखो
उस समय तो
ये भी निकलेंगे

और वे भी निकलेंगे
गाते-गुनगुनाते
हाँकते डींगें

साफ़-सुथरे
कटे-छँटे तराशे दिन
चमत्कार हैं

चमत्कारों की कल्पना में
मत उलझो
सुलझो धीरे-धीरे

परिस्थितियों से
बने तो झटका दे कर
तोड़ो

चमत्कारों में
पड़ी
गाँठें

■

चलते-चलते

पहले भी बहुत नहीं थी
महत्त्व की इच्छा

बचपन से सादी बातें
भाती थीं
गाती नहीं थीं कभी भी

परियाँ मेरे कान में
चन्दा आसमान में
अच्छा लगता था

मगर कभी नहीं सोची मैं ने
उसे मुट्ठी में पकड़ने की
बात

सादा-सादा दिन
सादी-सादी रात
माता-पिता भाई-बहन

दोस्तों का काम
सुख देता था
कुछ बड़ा हुआ

तो और-और समझा
यह तत्त्व
कि छोटी-छोटी बातों में ही है

बड़े से बड़ा महत्व
सपने नहीं देखे मैं ने
अपने छोटे-से घर में

कभी महलों के
बड़ी-बड़ी इच्छाएँ
उपजी ही नहीं मन में

तो पीछे क्या फिरता उन के हलों के
क़िस्से पढ़ता था
सपने देखने वालों के

तो पढ़ता ही रह जाता था
जागते नहीं थे मगर ख़याल
उन से मिलते-जुलते

रतन हाथी घोड़े
माल असबाब पाने के
स्वर्ग तक की कल्पना ने

नहीं छुआ मुझे कभी
और फिर
धीरे-धीरे तो

सब समझ में आने लगा
कि ज़िन्दगी सपना नहीं है
ठोस एक चीज है

और इस में
इच्छा न करने से
बहुत नहीं मरना पड़ता

तान कर शीश
उठा कर हाथ
बोल कर बड़े वचन

कुल मिला कर
दुखना होता है
सिर और हाथ और मन को

अपने तन को कम से कम
दूसरों के तन के लिए भी
कम से कम उतना ही

जुटाने की इच्छा
और कोशिश और उत्साह में
कभी ज़रूर नहीं पड़ने दी

शरीर अच्छा था
खट पाता था आठ घण्टे
मन ठीक था

खटने का दुख नहीं मानता था
यह तो सच ही है
कि बिरागी नहीं बना

कभी अपने आसपास से
आज भी
जब शरीर लगभग

थक गया है
खून एक बार तो
कहते हैं

रुक गया है रगों से बहते-बहते
तब भी
उदासीन नहीं रहना चाहता

अपने-तुपने सुख-दुख से
बड़ी चीज़
न पानी चाही

न कभी पायी हो
अनायास कुछ नहीं मिला
सिवा दोस्तों के

प्रेम के
कुशल-क्षेम के ये स्तम्भ
सदा उठ-उठ कर

थामे रहे
बीच-बीच में लड़खड़ाते हुए
साहस के पाँवों को

दोस्तों के बारे में
इतना और
कि चतुर कोई नहीं

निकला कभी
एकाध को छोड़ कर
ज्यादातर

मेरे जैसे ही सिद्ध हुए
याने केवल
स्नेह से विद्ध हुए

बँधे रहे हम आपस में
चतुर मुझे कुछ भी
कभी नहीं भाया

न औरत
न आदमी
न कविता

सामान्यता ही को सदा
असामान्य मान कर
छाती से लगाया

और उसी के बल पर
बड़े से बड़े-दुख को
त्योहार की तरह

मनाया
सवाया लगता रहा
हर आधा सुख

हर आधा दुख
परिपूर्ण से ज़्यादा जिया जीवन
इस तरह

सपने से दूर सामान्य के बल पर
सोचता हूँ
निहार तो लेता था मैं

आसमान का चाँद
तारे आसमान के
ऊपर आसमान में पहरों

और कभी इच्छा हुई ही
उन से खेलने की
तो चढ़ा लेता था उन्हें

अपनी अँगुली दे कर
नर्मदा की लहरों पर
लहरों में केवल झाँकने के

पहरों पर
तरजीह देते-से
लगते थे वे

इस खेल को
थोड़े में कहूँ तो कह सकता हूँ
जैसे धरती पर धान उग आता है

और जीता है अपनी
धरती हवा पानी किरण के अनुरूप
कम-ज्यादा जगा कर जड़ें

या जैसे पहाड़ से निर्झर गार बूँद
बनती है यथासम्भव नदी
या जैसे बँध कर शृंखला में पृथ्वी की

समुद्र रहता है शान्त
अशान्त भी कभी-कभी
वैसे मैं उगा हूँ

बहा हूँ
रहा हूँ बँधा या खुला
लगभग पचास बरस

और अब वातावरण में
दिखती है मुझे एक कटिबद्धता
विदाई की नहीं मरण की

लगता है बाहर सड़क पर
घनी रात है
और जो रास्ता दिखायेगा

पकड़ कर हाथ
वह मीठा नहीं बोलेगा
क्यों कि अब तक जितना

कर चुकना था मुझे
सामान्य के बल पर
मैं ने उतना नहीं किया

जितना जी चुकना था
उतना मैं नहीं
जिया !

सातवें मौसम का विकल्प

मैं पहले मौसमों का पीछा करता था
जैसे
कभी पीछे पड़ जाता था वसन्त के

तो जहाँ-जहाँ वह जाता था
जाता था उस के साथ-साथ कहो
पीछे-पीछे कहो

पुंस्कोकिल की तरह मचाता हल्ला
यहाँ अटक जाता था
मेरे उत्तरीय का पल्ला

गुलाव के काँटे में
तो भींगता था वहाँ
वह द्राक्षा-रस में

वर्षा की धुन लग जाती थी
तो उत्तर से दक्षिण
पूरव से पश्चिम

फिरता था उस की मेघ
राशि-राशि अलकों में
वँधा हुआ

यहाँ सुनता था केकारव
वहाँ निहारता था
कदली-वनों का सिहरना

घाट-घाट देखता था
बिफरना नदियों का
पाट-बेपाट

एक-एक ऋतु के पीछे
बारह-बारह महीने
घूमता था कभी-कभी

फिर ऐसा होने लगा
कि जब ऋतु आती थी
तब मुझे जैसे

सोते से जगाती थी
और मैं माफ़ी मांगता हुआ-सा
क़ुबूल करता था अपनी ग़लती

और
हो लेता था
उस के साथ

दस पांच दिन ले कर हाथ में हाथ
हम घूमते थे
और फिर मैं वापस आ जाता था

लौट कर भी खटकता तो रहता था
उस का अकेला घूमना
मगर भरोसा भी रहता था

कि मान लिया है ऋतु ने ठीक
मेरा यह
दो-चार दिन साथ रह कर वापस चले आना !

फिर धीरे-धीरे
ऐसा भी होने लगा
कि ऋतु के आने पर

मैं बचने लगा उस से
या लग कर गले उस के
मैं रोने लगा

और अब
अब तो ज़्यादातर मैं कहीं
मौसम कहीं होता है

न मैं पीछे फिरता हूँ उस के
न रोता हूँ उस के लिए
हम ने एक दूसरे को

गया-गुज़रा मान लिया है
या कहो उन्हों ने मेरा
मैं ने उन का सब कुछ जान लिया है

इतना ही हो सकता है अब
कि चौंकाये मुझे आ कर
कोई सातवाँ मौसम

खिल जाये कोई नया फूल
अब तक के जाने फूलों से अलग
या घिर जाये कोई नया ही बादल

अब तक के बादलों से भिन्न
एकदम अलग किसी आसमान में से
छिटक जाये एक दम नयी चाँदनी

या फिर मैं ही बदल जाऊँ
बदल जाये यह शरीर
जिस ने मौसमों का

सब कुछ भोग लिया है
सुख और शोक
आग और आलोक

मगर ये सब
अर्थात् विकल्प ये सारे
सातवां मौसम

शरीर का स्वास्थ्य
अथवा
नया देह धारण

सम्भव दिखते हैं
केवल कविता में
कविता में सब कुछ सम्भव है

सम्भव है कविता में
फिर से आँखें चार करना
छह-छह मौसमों से

घूमना एक-एक मौसम के पीछे
बारह-बारह महीने

मगर क़रीने से कठिन है जब
कविता लिखना
ऐसा है वह अब

जैसे पतझड़ के पातहीन
पेड़ पर
एक मोर

अच्छा नहीं लगता
ऐसा बेतुका दृश्य
खटबढ़ई हो यह पंछी

तो भी ठीक है

मौसम की आग
और मौसम का उजाला
दो चीजें नहीं

एक हैं
मगर मैं उस की आग
महसूस नहीं करता

और गड़ता है मुझे उस का उजाला

मौसम की या वक़्त की या ज़िन्दगी की
आग पर हावी है
मेरे नज़दीक आज उस का उजाला

और दिखाई दे रही है मुझे
उजाले में वह
जो होनहार है, भावी है

दिख रहा है मुझे
कि अब उजाला धीमा पड़ेगा
और आग होगी तेज़

यही ठीक है और ज़रूरी है
क्यों कि राख हो जाना था यों तो
कब का

मेरे इस सब का
मगर आ रही है वह घड़ी
अब

और साफ़ हुई यह बात
मौसम के समूचेपन में नहीं
उस की आग में नहीं

उस के उजाले में
घड़ी राख होने की आये
बुरा इस में कुछ नहीं है

बुरा यह है
कि मन राख होने से घबराये
मैं खुश हूँ कि वह नहीं हो रहा है

और तैयार है वह
राख होने के बाद
हज़ार-हज़ार कण होकर

उड़ने वाले शरीर
की जल-समाधि के लिए
हज़ार कण बन कर उड़ना।

शरीर का
मन को बहुत तकलीफ़ देता होगा
क्यों कि

नया जनम तो इन हजार कणों में से
एक कोई कण लेता होगा
थोड़ी देर उजाला आग पर हुआ हावी

और ठीक हुआ यह कि
इस उजाले में दिखी मुझे भावी
और समझ कर होनहार

जागी इच्छा
सातवें मौसम की
नये देह की !

■

संग्रह के खिलाफ़

हवा तेज बह रही है
और संग्रह जो मैं
मुरत्तिब करना चाह रहा हूँ
उड़ रही है उस के पन्ने

एक बूढ़ा आदमी
चल रहा है सड़क पर
बदल दिया है उस का रंग
बत्ती के मटमैले उजाले ने

और कुत्ते उस पर भौंक रहे हैं

छाया लैम्पपोस्ट की
साधिकार
आ कर पड़ी है
संग्रह के खुले पन्ने पर

हवा और कुत्ते और बूढ़ा आदमी
बत्ती और लैम्पपोस्ट
सब
मानो मेरे संग्रह के खिलाफ़ हैं

जी नहीं होता
इस सब के बीच
लिखते रहने का

कुत्तों को भगाऊँ जाऊँ
बूढ़े आदमी को
भीतर बुलाऊँ !

■ ■